Toppersnotes
Unleash the topper in you

UGC-NET

संस्कृत

National Testing Agency (NTA)

पेपर 2 || भाग – 2

SIERRA INNOVATIONS

UGC NET पेपर – 2 (संस्कृत)

क्र.सं.	अध्याय	पृष्ठ सं.
	इकाई – III **दर्शन-साहित्य**	
1.	**(क) प्रमुख भारतीय दर्शनों का सामान्य परिचय**	1
	❖ प्रमाणमीमांसा,	1
	❖ तत्त्वमीमांसा,	3
	❖ आचारमीमांसा (चारवाक, जैन, बौद्ध, न्याय, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा के संदर्भ में)	3
	इकाई – IV	
2.	**(ख) दर्शन-साहित्य का विशिष्ट अध्ययन**	
	ईश्वरकृष्णः; सांख्यकारिका –	10
	❖ सत्कार्यवाद,	11
	❖ पुरुषस्वरूप,	11
	❖ प्रकृतिस्वरूप,	12
	❖ सृष्टिक्रम,	12
	❖ कैवल्य	13
	सदानन्दः; वेदान्तसारः :	14
	❖ अनुबन्ध-चतुष्टय,	15
	❖ अज्ञान,	15
	❖ अध्यारोप-अपवाद,	16
	❖ लिंगशरीरोत्पत्ति,	17
	❖ पंचीकरण,	17
	❖ महावाक्य,	18
	❖ जीवन्मुक्ति	19
	अन्नंभट्ट; तर्कसंग्रह/ केशव मिश्र; तर्कभाषा :	
	❖ पदार्थ,	19
	❖ कारण,	22
	❖ प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द),	22
	❖ प्रामाण्यवाद,	25
	❖ प्रमेय।	25
	1. लौगाक्षिभास्करः; अर्थसंग्रह	26
	2. पतंजलि; योगसूत्र, - (व्यासभाष्य) : चित्तभूमि, चित्तवृत्तियाँ, ईश्वर का स्वरूप, योगाङ्ग, समाधि, कैवल्य।	27
	3. बादरायण; ब्रह्मसूत्र 1.1 (शांकरभाष्य)	28
	4. विश्वनाथपंचानन; न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (अनुमानखण्ड)	28
	5. सर्वदर्शनसंग्रह; जैनमत, बौद्धमत	29
	❖ **MCQs**	31

इकाई – V व्याकरण एवं भाषा विज्ञान		
3.	**(क) सामान्य-परिचय : निम्नलिखित आचार्यों का परिचय—**	
	❖ पाणिनि,	43
	❖ कात्यायन,	43
	❖ पतंजलि,	43
	❖ भर्तृहरि,	44
	❖ वामनजयादित्य,	44
	❖ भट्टोजिदीक्षित,	44
	❖ नागेशभट्ट,	45
	❖ जैनेन्द्र,	45
	❖ कैयट,	45
	❖ शाकटायन,	46
	❖ हेमचन्द्रसूरि,	46
	❖ सारस्वतव्याकरणकार।	46
	❖ पाणिनीय शिक्षा	46
	भाषाविज्ञान :	
	❖ भाषा की परिभाषा,	51
	❖ भाषा का वर्गीकरण (आकृतिमूलक एवं पारिवारिक),	52
	❖ ध्वनियों का वर्गीकरण : स्पर्श, संघर्षी, अर्धस्वर, स्वर (संस्कृत ध्वनियों के विशेष संदर्भ में), मानवीय ध्वनियंत्र	53
	❖ ध्वनि परिवर्तन के कारण,	55
	❖ ध्वनि नियम (ग्रिम, ग्रासमान, वर्नर)।	57
	❖ अर्थ परिवर्तन की दिशाएँ एवं कारण, वाक्य का लक्षण व भेद, भारोपीय परिवार का सामान्य परिचय, वैदिक संस्कृत एवं लौकिक संस्कृत में अन्तर, भाषा तथा वाक् में अन्तर, भाषा तथा बोली में अन्तर।	58
इकाई – VI		
4.	**(ख) व्याकरण का विशिष्ट अध्ययन :**	
	❖ **परिभाषाएँ –** संहिता, संयोग, गुण, वृद्धि, प्रातिपदिक, नदी, घि, उपधा, अपृक्त, गति, पद, विभाषा, सवर्ण, टि, प्रगृह्य, सर्वनामस्थान, भ, सर्वनाम, निष्ठा।	67
	❖ **सन्धि –** अच् सन्धि, हल् सन्धि, विसर्ग सन्धि (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)	69
	❖ **सुबन्त –**	81
	❖ **अजन्त –** राम, सर्व (तीनों लिंगों में), विश्वपा, हरि, त्रि (तीनों लिंगों में), सखि, सुधी, गुरु, पितृ, गो, रमा, मति, नदी, धेनु, मातृ, ज्ञान, वारि, मधु।	81
	❖ **हलन्त –** लिह्, विश्ववाह्, चतुर् (तीनों लिंगों में), इदम् (तीनों लिंगों में), किम् (तीनों लिंगों में), तत् (तीनों लिंगों में), राजन्, मघवन्, पथिन्, विद्वस्, अस्मद्, युष्मद्।	90

	❖ **समास –** अव्ययीभाव, तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्व (लघुसिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)	94
	❖ **तद्धित –** अपत्यार्थक एवं मत्वर्थीय (सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार)	99
	❖ **तिङन्त –** भू, एध्, अद्, अस्, हु, दिव्, पुष्, तुद्, तन्, कृ, रुध्, क्रीञ्, चुर्।	99
	❖ **प्रत्ययान्त –** णिजन्त; सन्नन्त; यङन्त; यङ्लुगन्त; नामधातु।	110
	❖ **कृदन्त –** तव्य / तव्यत्; अनीयर्; यत्; ण्यत्; क्यप्; शतृ; शानच्; क्त्वा; क्त; क्तवतु; तुमुन्; णमुल्।	111
	❖ **स्त्रीप्रत्यय –** लघुसिद्धान्त कौमुदी के अनुसार	116
	❖ **कारक प्रकरण –** सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार	119
	❖ **परस्मैपद एवं आत्मनेपद विधान –** सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार	127
	❖ **महाभाष्य (पस्पशाह्निक) –** शब्दपरिभाषा, शब्द एवं अर्थ संबंध, व्याकरण अध्ययन के उद्देश्य, व्याकरण की परिभाषा, साधु शब्द के प्रयोग का परिणाम, व्याकरण पद्धति।	127
	❖ **वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड) –** स्फोट का स्वरूप, शब्द-ब्रह्म का स्वरूप, शब्द-ब्रह्म की शक्तियाँ, स्फोट एवं ध्वनि का संबंध, शब्द-अर्थ संबंध, ध्वनि के प्रकार, भाषा के स्तर।	129
	❖ **MCQs**	135

III

CHAPTER

दर्शन-साहित्य

प्रमुख भारतीय दर्शनों का सामान्य परिचय :

मीमांसा दर्शन का परिचय

- ऐसी स्थिति में वैदिक धर्म के अनुयायियों को आवश्यकता महसूस हुई कि वैदिक साहित्य में पुनः निरीक्षण एवं निर्माण हो ताकि लोगो के सामने उन्हें निर्दोष रूप में त्रुटिहीन रखा जा सके तथा बताया जा सके की वैदिक कर्मकांड क्या फल देने की शक्ति रखते हैं! इनका ग्रंथ जैमिनी सूत्र या मीमांसा सूत्र है! यह मीमांसा दर्शन का आधार है! जैमिनी को ही मीमांसा दर्शन का प्रणेता माना गया है !
- भारतीय दर्शन में वेदों की मेहता सर्वविदित है! वेदों को मान्यता देने के कारण संख्या योग, वैशेषिक, मीमांसा, न्याय, एवं वेदांत, ये षड़दर्शन आस्तिक कहे जाते हैं! यह वेदों की सत्ता को स्थापित करता है तथा वेदों पर आधारित है! इन षड़दर्शनो में मीमांसा दर्शन पूर्णतः अग्रंथि है !
- मीमांसा शब्द का सामान्य अर्थ विचार करना है! भारतीय दर्शन के इतिहास में दो मीमांसा दर्शनों का उल्लेख मिलता है मीमांसा दर्शन को कर्म मीमांसा या धर्म मीमांसा भी कहा जाता है इसके विपरीत "वेदांत"वेदों के ज्ञान कुंड पर आधारित होने के कारण ब्रह्म मीमांसा भी कहा जाता है
- विद्वानों के अनुसार जब बौद्ध मत का उदय हुआ तो वैदिक कर्मकांड पर प्रश्न चिन्ह लगने लगे! वैदिक कर्मकांड को लेकर शंकाएं एवं विवाद बढ़ गए! वैदिक रीति रिवाज कर्मकांड शब्द होते हैं इसका कोई मूल्य नहीं है हवन बाली यज्ञ इत्यादि अनावश्यक है इनसे कोई लाभ नहीं होता !
- उन्होंने मीमांसा को तीन भागों में विभाजित किया है जिनका वर्णन निम्न प्रकार है-
  - ✓ पृमाणमीमांसा
  - ✓ तत्त्वमीमांसा
  - ✓ आचारमीमांसा

प्रमाणमीमांसा

- प्रभाकर ने यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के पांच पृमाणै- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द तथा अर्थापति को स्वीकार किया था पांच पृमाणै के अतिरिक्त अनुपलब्धि को भी यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने के प्रमाण (साधन) के रूप में स्वीकार किया! उल्लेखनीय है कि प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण को न्नौयानिकों जिस रूप में स्वीकार किया है वही दृष्टिकोण मीमांस को का भी है! किंतु उपमान तथा शब्द प्रमाण नौयानिकों से भिन्न है!

- मीमांसको के अनुसार 'प्रमा' किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान है! महर्षि जैमिनी ने इस यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रत्यक्ष अनुमान एवं शब्द प्रमाणो का विवेचन किया था! जैमिनी के बाद बहुत से टीकाकार एवं स्वतंत्र ग्रंथकार हुए उनमें से दो मुख्य हैं कुमारिल भट्ट एवं प्रभाकर!इन दोनों के नाम पर मीमांसा में कृमश: दो संप्रदाय चल पड़े भट्ट मीमांसा एवं प्रभाकर मीमांसा
- मीमांसक, ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करने के कारण है अनीराशावादी है किंतु नास्तिक नहीं है क्योंकि ये वेदों को प्रमाणिक मानते हैं मीमांसा दर्शन का मुख्य उद्देश्य वेदों के प्रामाणय को स्थापित करना था, किंतु इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए प्रमाण मीमांसा के विभिन्न तत्वों की विस्तृत विवेचना की गई है! उल्लेखनीय है कि मीमांसको की प्रमाण मीमांसा यथार्थवादी ही है! जिनका वर्णन निम्न प्रकार है

उपमान प्रमाण :

- ✓ ज्ञात अपनी स्मृति के आधार पर स्मूत वस्तु एवं प्रत्यक्ष वस्तु के बीच सामानता का ज्ञान प्राप्त करता है मीमांसको के अनुसार माना ज्ञाता को गाय को पूर्व ज्ञान है जब वह वन में गया तो उसने गाय से समानता रखता हुआ एक पशु देखा तो उसे देखते ही उसने अपनी स्मृति के आधार पर यह ज्ञान प्राप्त कर लिया कि अरे गाय तो बिऔल्कुल उसे पशु की तरह है! माना किसी ने उसे बताया कि वह नीलगाय है तब उसे ज्ञात हो गया कि वह गाय, नीलगाय की तरह है
- ✓ मीमांसाको का उपमान प्रमाण नैयायिकों से थोड़े भिन्न हैं! न्याय दर्शन में उपमान प्रमाण के अंतर्गत सामानता का प्रत्यक्ष करके 'नाम' एवं 'नामी' के बीच संबंध का ज्ञान प्राप्त किया जाता है! किंतु मीमसकों का मत है कि उपमान प्रमाण के अंतर्गत हमें यह ज्ञात होता है! कि स्मृत वस्तु प्रत्यक्ष वस्तु की तरह है!

शब्द प्रमाण :

- ✓ मीमांसाकों के अनुसार शब्द तथा अर्थ का संबंध नित्य है! चूंकि मीमांसाको अनीश्वरवादी है इसलिए वह कहते हैं कि जब ईश्वर है ही नहीं तो शब्दों के अर्थ कौन परिवर्तित करेगा? वेद शब्द नित्य है, क्योंकि इसकी रचना मैं तो मनुष्य ने की है और न ही ईश्वर ने इसलिए यह अपौरूषेय हैं! यह वेद यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के साधना
- ✓ शब्दों में अर्थ प्रदान करने की जो शक्ति है नौयायिक उसे शब्द शक्ति कहते हैं! तथा बताते हैं कि शब्द शक्ति अनित्य है क्योंकि यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करती है! इस संदर्भ में नौयायिको का मत था कि चुंकि शब्दों के अर्थ ईश्वर ने निश्चित किए हैं तथा ऐसा हो सकता है कि सृष्टि के बाद अगली सृष्टि में ईश्वर शब्दों के अर्थ को बदल दें! अतः शब्द तथा अर्थ संबंध अनित्य हैं, क्योंकि यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर करता है!
- ✓ नौयायिकों के अनुसार शब्द अनित्य है क्योंकि उत्पन्न तथा नष्ट होते हैं! इनके विपरीत मिमांसाक शब्दों को नित्य मानते हैं! इनके अनुसार वेद के शब्द नित्य हैं! इस संदर्भ में मीमांसक की मान्यता थी कि शब्द उत्पन्न एवं नष्ट नहीं होते, बल्कि आवाज उत्पन्न और नष्ट होती है जैसे-बोलने से ऊं शब्द उत्पन्न नहीं हुआ ऊं तो नित्य हैं आवाज के द्वारा ऊं को व्यक्त किया गया है अतः आवाज उत्पन्न और नष्ट नहीं होती है'शब्द 'नहीं 'शब्द 'नित्य है!
- ✓ मिमांसा के अनुसार शब्द तथा अर्थ का संबंध नित्य है! चूंकि मीमांसक अनीश्वरवादी है इसलिए वे कहते हैं कि जब ईश्वर है ही नहीं इसलिए यह अपौरूषेय हैं मीमांसको के अनुसार वेद स्वत प्रकट हुए हैं तथा ये वेद यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के साधन हैं!

तत्त्वमीमांसा

तत्त्वमीमांसा का वर्णन निम्न बिंदुओं द्वारा स्पष्ट है -

- ईश्वर विचार जौमिनी ने ईश्वर को नहीं माना! सम्भवत:उनका मत या कि ईश्वर को मानने की आवश्यकता नहीं है इसलिए ईश्वर तत्व की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कर्मों का फल अपव् के अनुसार मिलता है!
- मीमांसक शुद्ध वैदिक कर्मकांड के तर्क के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास करते हैं! उनके अनुसार यज्ञ करने से मानक को स्वगृं की प्राप्ति होती है! वेदों में जो ज्ञानप्रधान बातें हैं!
- कर्मफलों की वह नित्य-शाशवत गुप्त शक्ति जो समयानुसार अपना फल या परिणाम प्रदान करती है अपूर्व कहलाती है जैमिनी ने देवों की सत्ता को स्वीकार किया है, परंतु इसका महत्व तत्वमीमांस य न होकर कर्मकाण्डीय है!
- मीमांसा दर्शन वेदों की क्रियापरक व्याख्या करता है! उसके ज्ञानमीमांसीय वाक्य को भी वह तभी सत्य मानता है जब वे कर्मपरक वाक्यों से संबंधित हों!
- मीमांसक शुद्ध वैदिक कर्मकांडों को तर्क के आधार पर सिद्ध करने का प्रयास करते हैं!उनके अनुसार यज्ञ करने से मानक को स्वर्ग की प्राप्ति होती है!
- आत्मतत्व विचार-नित्य अनेक आगन्तुक गुण मूलत:अचेतन, ज्ञाता, कर्ता, भोक्ता! मीमांसक परमाणुवाद के समर्थक हैं! आसक्त्कार्यवाद के आधार पर जगत के निर्माण की व्याख्या करने वाला सिद्धांत परमाणुवाद कहलाता है! सृष्टि की उत्पत्ति जीवात्माओं को उनके कर्म फलोपभोग कराने वह जन्म मरण के चक्कर से मुक्त करने के लिए हुई हैं!
- अभिहितान्वयवाद के प्रतिपादक कुमारील भट्ट है! इस सिद्धांत में वेद वाक्य विधि वाक्य है वेद हमें कर्म करने का या न करने का आदेश देता है ऐसे ही कुमारील ने अभिहीतान्वयवाद कहा है! कुमरिल ज्ञान को आत्मा की क्रिया मानते हैं!
- अन्विताभिधानवाद के प्रतिपाद प्रभाकर हैं यह भाषा से संबंधित सिद्धांत है इनके अनुसार भाषा अर्थ का निधारण तभी होता है जब पहले उसमें प्रयुक्त शब्दों का अर्थ ज्ञात हो जाए अथार्थ छोटे-छोटे शब्दों के अर्थों के अन्वय से ही भाषा का अभिधान होता है!
- मीमांसकों के अनुसार ब्रह्मा सिद्ध वस्तु है! सिद्ध वस्तु प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो का विषय होती है ऐसी वस्तु के प्रतिदिन में श्रुतिका कोई पुरुषार्थ नहीं है देख वेद तो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणो के अविषय स्वर्ग आदि फल और उनके साधन भूत यज्ञ आदि कर्मों के प्रतिपादक हैं यदि वेद ज्ञात या सिद्ध वस्तु का वर्णन करें तो वह अनुवाद मात्रा कहलाएगा इससे वेदों में प्रमाण्य सिद्ध नहीं होगा!
- प्रभाकर एक ज्ञान नहीं है भ्रम में दो भिन्न ज्ञान होते हैं जिनके दो अलग-अलग विषय होते हैं ब्रह्म का अर्थ दोनों में अलग-अलग विषयों के भेद का अज्ञान या अग्रहण है अख्यातिवाद मे भृम की उत्पत्ति इन दोनों के असंसगि ग्रहण से होती है! प्रभाकर का सिद्धांत जिसमें भ्रांति दो ज्ञानोके विवेक के अग्रहण के कारण संभव होती है अख्यातिवाद के नाम से प्रसिद्ध है!

आचारमिमांसा

आचारमिमांसा का वर्णन निम्न बिंदुओं द्वारा स्पष्ट है -

- एक व्यक्ति का अन्य व्यक्तियों या जगत् के प्रति क्या कर्तव्य है? यह और कई अन्य ऐसे प्रश्न हैं जो एक और रहस्य में ही पार-लौकिकता को स्पर्श करते हैं प्रकारान्त से यह कहा जा सकता है कि जो पृयत्न श्रृंखला सार्थक या सम्यक उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृष्टि के साथ जोडी है वह लौकिक क्षेत्र में आचार कहलाती है अतः वैश्विक गृन्थो में यंत्र -तंत्र जो कतिप्य संकेत उपलब्ध होते हैं उनके आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि वैश्वीकों का अचारपकर दृष्टिकोण भी वेद मुलक ही है! की लौकिक अभ्यदुय औरप पारलौकिक नि:श्रेयस्व तत्वज्ञानस्य है तत्वज्ञान धर्म का प्रमाण हैं!

➢ प्राय: सभी दर्शनों के आकार ग्रंथो में ज्ञान मीमांसा के साथ-साथ किसी- न- किसी रूप में अचार का विवेचन भी अन्तर्निहित रहता है धर्म -अर्ध -काम तथा मोक्ष के सम्यक् विवेक के साथ जीवन में संतुलित कार्य करना ही आचार है! यही कारण है कि साथ जीवन में संतुलित कार्य करना ही आचार है क्या कोई ऐसी शक्ति है जो उसका नियंत्रण कर रही है क्या मनुष्य जो कुछ है? उसमें वह कोई परिवर्तन ला सकता है? व्यक्ति और समष्टि में क्या अंतर या संबंध है?

चार्वाक दर्शन मीमांसा के संदर्भ में

तत्व मीमांसा :

➢ चूंकि चार्वाक प्रत्यक्ष और केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानता है! उसके मत में प्रत्यक्षदृश्यमान राजा ही ईश्वर है। वह अपने राज्य तथा उसमें रहने वाली प्रजा का नियन्ता होता है। अतः उसे ईश्वर ही मनाना चाहिए।

➢ चार्वाक के मतअनुसार महाभूतों की संख्या चार ही है। आत्मा नामक कोई भी अन्य पदार्थ नहीं है इसलिए चैतन्य शरीर का ही गुणधर्म सिद्ध होता है ईश्वर न्याय आदि शास्त्रों में ईश्वर की सिद्धि अनुमान या आप्त वचन से की जाती है।

प्रमाण मीमसा :

➢ ठंडी हवा के झोंके तथा वृक्षों को देखकर हम वहां पानी के होने की संभावना मानते हैं लेकिन जल की उपलब्धि वहां जाकर प्रत्यक्ष रूप से देखने पर निश्चित होती है अतः संभावना उत्पन्न करने तथा लेकव्यवहार चलाने के लिए अनुमान आवश्यक है। लेकिन वहां प्रमाण नहीं हो सकता जिस व्याप्ति के आधार पर अनुमान प्रमाण की सता मानी जाती है, वह व्याप्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। प्रमेय यथार्थ विषय का ज्ञान अर्थात प्रमा के लिए प्रमाण की आवश्यकता होती है। चार्वाक लोग केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को मानते हैं विषय तथा इंद्रिय सन्निकषृ से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। चार्वाक का कथन है कि अनुमान से केवल संभावना पैदा की जा सकती है। निश्चयात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष होता है।

आचार मीमांसा :

➢ चार्वाक केवल प्रत्यक्षवादित का समर्थन करता है, वह अनुमान आदि प्रमाणो को नहीं मानता है। उसके मत से पृथ्वी, जल, तेज, और वायु यह कर ही तत्व हैं। जिनसे सब कुछ बना हैं। उसके मत में आकाश तत्व की स्थिति नहीं है। इन्हीं जिनसे सब कुछ बना है। चारों तत्वों के मेल से यह देह बनी है उनके विशेष प्रकार के संयोजन मात्र से देह में चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। जिनको लोग आत्मा कहते हैं जब शरीर का विनाश हो जाता है तो चैतन्य भी नष्ट हो जाता है इन्हीं भूतों के नष्ट होते ही समाप्त हो जाता है इसलिए जो चेतन में देह दिखाई देती है वही आत्मा का सरूप है। देह से अतिरिक्त आत्मा होने का कोई प्रमाण ही नहीं मिलता है।

➢ चार्वाक लोग इस प्रत्यक्ष दृश्यमान शरीर और संसार के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ को स्वीकार नहीं करते। धर्म -अर्थ -काम और मोक्ष नामक पुरुषार्थ चतुष्टय को वे लोग पुरुष अर्थात मनुष्य शरीर के लिए उपयोगी मानते हैं उनकी दृष्टि में अर्थ और काम ही परम पुरुषार्थ है। धर्म नाम की वस्तु को मनाना मूर्खता है, क्योंकि इस संसार के अतिरिक्त कोई स्वर्गद हैं ही नहीं तो धर्म के सुख को स्वर्ग में भोगने की अंर्तगल है!

➢ जिनसे मन प्रसन्न हो। शरीर तथा मन को आनंदित करने में बाधा उत्पन्न करने वाले तत्वों को नष्ट कर देना चाहिए। शारीरिक तथा मानसिक कष्ट सहना; विषयानंद से मन और शरीर को शारीरिक तथा मानसिक कष्ट सहना, विषयानंद से मन और शरीर को बलपूर्वक विरत करना अधर्म है। आस्तिक वैदिक रूप अर्ध वैदिक दर्शनों में पुराणो व स्मृतियों में वर्णित आचार का पालन यदि शरीर सुख का साधन है।तो उनका अनुसरण करना चाहिए और बाधक है।तो उनका सर्वथा त्याग करना चाहिए।

- चार्वाक के मत से स्त्री, पुत्र अपने कुटुंबियों से मिलने और उनके द्वारा दिए जाने वाले सुख ही सुख कहलाते हैं। संसार में खाना-पीना तथा सुखपूर्वक रहना चाहिए। इस दर्शन में कहा गया है कि

"यावज्जीवेत सुखं जीवेद ऋण कृत्वा घृतं पिबेत्

भस्मीभुतस्यजब देहस्य पुनरागमन कुत: ।।"

- अर्थात् तक जीना चाहिए सुख से जीना चाहिए अगर अपने पास साधन नहीं है तो दूसरे उधार लेकर घी पीना चाहिए शमशान में शरीर जलने के बाद उसे वापस आते किसने देखा है। चार्वाको वचन बहुत मीठे होते थे इसी कारण यह चार्वाको कहलाए। चारु का अर्थ ही सुंदर होता है। क्योंकि यह दर्शन लोगों में आयत अर्थात फैला हुआ है।दर्शन को लोकनवादी, रसवादी, अनिश्वरवादी नास्तिक आदि।

जैन दर्शन मीमांसा के संदर्भ में

प्रमाण मिमांसा :

- जैनों के आगमों में पंच ज्ञान का सिद्धांत ही प्राचीन था। जैन दर्शन में सर्वप्रथम पहली शती AD के पास -उमा स्वाती ने प्रमाण की चर्चा की। फिर भी इस प्रमाण के क्षेत्र में जैनो का प्रवेश बौद्ध, नौयायिकों, मीमांसकों के बहुत पश्चात हुआ।
- प्रमाण का अर्थ पदार्थ को जानने का माध्यम या साधन है "प्रमांकरण प्रमाण"। प्रमा का अर्थ है ज्ञान, करण का अर्थ है साधन। अर्थ हुआ ज्ञान का साधन प्रमाण है।
- अनेकान्तवाद जैन दर्शन का आधारित सिद्धांत रहा है। अनेकांत का उपयोग द्रव्य मीमांसा के लिए हुआ करता था, किंतु समय में परिवर्तन हुआ खण्डन-मण्डन का युग आया करता, तब अनेकान्त का उपयोग क्षेत्र भी बदल गया। जैन आगम ज्ञान मीमांसा प्रधान रहे हैं किंतु आगम युग में जैसे-जैसे न्याय विद्या का विकास हुआ वैसे-वैसे प्रमाण मीमांसा की आवश्यकता महसूस होने लगी।

तत्व मीमांसा :

- जैन तत्व मीमांसा सात सत्य अथवा मौलिक सिद्धांतों पर आधारित है, जिन्हें तत्व कहा जाता है।यह मानव दुर्गति की प्रकृति और उसका निदान करने का प्रयास है। प्रथम दो सत्यों के अनुसार, यह स्वयं सिद्ध है की जीव और अजीव का अस्तित्व है।
- तीसरा सत्य है, कि दो पदार्थों जीव और अजीव के मेल से जो योग कहलाता है कर्म दृव्य जीव में प्रवाहित होता है यह जीव से चिपक जाता है और कर्म में बादल जाता है।
- चौथा सत्य बंन्ध का कारक है जो चेतन की अभिव्यक्ति को सीमित करता है।
- पांचवा शक्ति नए कर्मों को रोक सही चरित्र, सही दर्शन एवं सही ज्ञान के पालन के माध्यम से आत्मा -संयम द्वारा संभव है गहन आत्म -संयम द्वारा मौजूदा कर्मों को भी जलाया जा सकता है।
- इस छठे सत्य को 'निर्जरा' शब्द द्वारा व्यक्त किया गया है।
- अंतिम सत्य यह है कि जब जीव कर्मों के बंधन से मुक्त हो जाता है, तो मोक्ष या निर्वाण को प्राप्त हो जाता है।

आचार मीमांसा :

- जैन परंपरा में आचार के स्तर पर श्रावक और साधु यह दो श्रेणियां है। श्रावक ग्रस्त होता है। उसे जीवन के संघर्ष में हर प्रकार का कार्य करना पड़ता है। जीविकोपार्जन के साथ ही आत्मोत्थान एवं समाजोत्थान के कार्य करने पड़ते हैं। पता है ऐसे ही अचारगत नियमों आदि के पालन का विधान किया गया, जो व्यवहार्य हो क्योंकि सिद्धांत की वास्तविकता क्रियात्मक जीवन में ही चरितार्थ हो सकती है।

- इसलिए श्रावकोचित आचार-विचार के प्रतिपादन और परिपालन का विधान श्रावकाचार आदर्श जीवन के उत्तरोत्तर विकास की जीवन शैली प्रदान करता है। श्रावकाचार के परिपालन हेतु साधु वर्ग सदा से श्रावकों का प्रेरणा स्रोत रहा है। वस्तुत: साधु राग द्वेष से परे समाज का संरक्षण होता है। वह समाज हित में श्रावकों में छोटे-छोटे स्वार्थों के त्याग करने एवं क्षमता भाव की शिक्षा देता है।

बौद्ध दर्शन मीमांसा के संदर्भ में

बौद्ध दर्शन अपने प्रारंभिक काल में जैन दर्शन की ही भांति आचार शास्त्र के रूप में था। बाद में बुद्ध के उपदेशों के आधार पर विभिन्न विद्वानों ने इसे आध्यात्मिक रूप देकर एक सशक्त दार्शनिक शास्त्र बनाया। बुद्ध द्वारा सर्वप्रथम सारनाथ में दिए गए उपदेशों में से चार अर्थ सत्य इस प्रकार हैं -

1. दुःख-संसार दुःखमय है।
2. दुःख समुदाय दर्शन-दु:ख उत्पन्न होनेके कारण हैं (तृष्णा)
3. दु:ख निरोध-दु:ख का निवारण संभव है।
4. दुःख निरोध मार्ग-दु:ख निवार मार्ग (आष्टांगिक मार्ग)

प्रमाण मीमांसा :

- बौद्धो के अनुसार वस्तु का निरंतर परिवर्तन होता रहता है और कोई भी पदार्थ एक क्षण से अधिक स्थायी नहीं रहता है। यही प्रमाण के अंतर्गत आते हैं कोई भी मनुष्य किन्हीं भी दो क्षणों में एक साथ नहीं रह सकता, इसलिए आत्मा भी प्रमाण रूप में क्षणिक हैं।

तत्व मीमांसा :

- प्रतीतो समुत्पाद से तात्पर्य एक वस्तु के प्राप्त होने पर दूसरी वस्तु की उत्पत्ति अथवा एक कारण के आधार पर एक कार्य की उत्पत्ति से है। तत्व मीमांसाको ने इस चक्कर के 12 तत्वों को मना है। अविधा, संस्कार, विज्ञान, नाम रूप षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान भव, जाति और जरा मरण।

आचार मीमांसा :

- व्यवहार में पुनश्च परिकल्पित और परतंत्र दो रूप ग्राह्य है यहां चित् की प्रवृत्ति वी निर्वती होती है। सभी वस्तुएं चित् का ही विकल्प हैं। इस आचारवाद कहते हैं। यह आचारवाद श्रणिक विद्वानों की सन्तिति माश्र है ।

न्याय दर्शन मीमांसा के संदर्भ में

प्रमाण मिमांसा :

न्याय दर्शन संस्कृत शब्द जिसका अर्थ है 'व्युत्पत्ति के आधार पर मार्गदर्शन करने वाला'। प्रपूर्वक या धातु के कारण अर्थ ल्युट प्रत्यय करके ल्युट के अन आदेश होने पर प्रमाण पद निष्पन्न होता है। इसके विषय का यथार्थ अनुभव हो से उसे विषय में प्रमाण कहा जाता है जो इसका व्युत्पत्ति लभ्य है। प्रमा अर्थात उत्कृष्ट ज्ञान का कारण प्रमाण है। ज्ञान की उत्कृष्टता उसके यथार्थ होने से होती है। यद्यपि यथार्थ ज्ञान अनुभव और स्मरण के भेद से दो प्रकार के होते हैं। तथापि स्मरण का असाधारण कारण कारण अनुभव भी होता है। अतः अनुभव ही प्रमुख रूप से 'प्रमा' कहलाता है। स्मरण तो अनुभूत विषय का ही होता है अतः स्मरण स्थल मे अनुभव ही प्रमाण होता है। फलत: अनुभव रूप प्रधान प्रमा का असाधारण कारण प्रमाण होता हैं। अनुभव के चार प्रकार कह गए हैं

- प्रत्यक्ष
- अनुमिति
- उपमिति
- शब्द बोध

किस प्रकार हम संक्षिप्त में कह सकते हैं कि भारतीय न्याय दर्शन में प्रमाण उसे कहते हैं जो सत्य ज्ञान करने में सहायता करें साधन या प्रक्रिया मुझे किसी भी दूसरी बात का यथार्थ ज्ञान हो। प्रमाण न्याय का प्रमुख विषय है।

तत्व मीमांसा :

न्याय दर्शन में तत्व मीमांसा का महत्वपूर्ण स्थान है दूसरे शब्दों में जिसकी सहायता से किसी स्थान पर पहुंचा जा सके, उसे न्याय कहते हैं, किन्हीं तत्वों के आधार पर निर्णय पर पहुंचना ही न्याय है।

न्याय दर्शन में तत्व चार प्रकार के माने गए हैं-

- पारितंत्र तत्व
- स्वतंत्र तत्व
- अधिकरण तत्व
- अनुपगम तत्व

आचार मीमांसा :

- न्याय दर्शन में आचार मीमांसा को समझने के बाद समस्त मानव जाति ने अपने स्वरूप को ही पूर्ण रूप से बदल लिया है। क्योंकि आचार का शाब्दिक अर्थ है 'आचरण'। इस प्रकार हम संक्षेप में कह सकते हैं कि अच्छे आचरण से न्याय के आदर रखना।

<u>सांख्य दर्शन मीमांसा के संदर्भ में</u>

- संख्या का सिद्धांत भारतीय दर्शन परंपरा का प्राचीनतम मत प्रतीत होता है। परवर्ती काल मे सांख्य शब्द का प्रयोग मिलता है उपनिषद महाभारत और गीता में सांख्य के सिद्धांत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं। सांख्य दर्शन के प्रवर्तक महर्षि कपिल हुए जो उपनिषत्कालीन ऋषि थे ।

प्रमाण मीमांसा :

- इंद्रियों के साथ संबंध होने से किसी वस्तु का ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। सांख्य दर्शन में चार मीमांसा सा है-इन चार प्रमाणो के अतिरिक्त मीमांसक वेदांती और पौराणिक चार प्रकार के और प्रमाण मानते हैं-ऐतिह्य अर्थापति, संभव और अभाव। जो बात केवल परंपरा से प्रसिद्ध चली आती है, वह जी प्रमाण से मानी जाती है, वही प्रमाण का मुख्य भाग माना जाता है।

तत्व मीमांसा :

- इस पच्चीस तत्वों की विवेचना सांख्य दर्शन का विषय है। इनमें पुरुष प्रकृति है। पांच कमेइंद्रियां, पांच महाभूत और एक मन ये केवल 16 विकृति है। शेष सात तत्व पांच मात्राएं महत और अहंकार प्रकृति और विकृति दोनों हैं दुःखत्राय की निवृत्ति सांख्य दर्शन का लक्ष्य है। चेतन तत्व पुरुष है। यहां आत्मा है। यह अनेक है यह स्वभाव से शुद्ध मुक्त और विकार रहित है।

- सांख्य पद संख्या शब्द में अण प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है, सांख्य पद का अर्थ है- गणना। सांख्य दर्शन में 25 तत्वों की गणना की गई है इसलिए इसको सांख्य कहते हैं। यह 25 तत्व है-(मूल) प्रकृति, महत (बुद्धि) अहंकार मन पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कोमेंद्रीयां, पांच तन्मात्राएं, पांच महाभूत और पुरुष ।

आचार मीमांसा :

- सांख्य दर्शन में प्रकृति को तीन गुणो सम्मिलित होने के कारण त्रिगुण की संज्ञा दी गई है। सांख्य दर्शन में इन तीन गुना का विवेचनआचार मीमांसाको द्वारा किया गया है। मीमांसाको ने गणना के आधार पर इसका रूप प्रतिपादित किया है।

योग दर्शन मिमांसा के संदर्भ में

- आस्तिक दर्शनों में योग दर्शन का बहुत महत्व है। योग दर्शन के विचार अपने मूल रूप में बहुत प्राचीन है। अथर्ववेद में योग द्वारा प्राप्त अलौकिक शक्तियों का वर्णन हुआ है। कठ, तैन्तिरीय और मैत्रायणी उपनिषदों में योग की परिभाषा दी गई है। योग दर्शन के प्रवर्तक आचार्य पतंजलि हुए हैं। जिन्होंने विभिन्न प्राचीन ग्रंथो में बिखरे हुए योग संबंधी विचारों को संग्रह करके और अपनी प्रतिभा से संजोकर 'योगसूत्र' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ की रचना की।

प्रमाण मीमांसा :

- योग दर्शन में धर्म प्रमाणो का निरूपण किया गया है। धर्म प्रमाणो के माध्यम से सभी मनुष्य आध्यात्मिक गुणोक्षको ग्रहण करते हैं। इनके अतिरिक्त विधि अथर्ववेद स्मृति शिष्टाचार प्रकरण अंतर श्रुति अर्थ पाठ आदि बोधन प्रमाण है।

तत्व मीमांसा :

- योग शब्द युज धातु से धण् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न हुआ है।
- इसका अभिप्राय सम्यक प्रकार से परमात्मा से मिलन है। जब मनुष्य सभी कामनाओं को त्याग कर तत्वों को ग्रहण करें। योग में तत्वों को पांच प्रकार का माना गया है-प्रमाण विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इसी प्रकार योग में तत्वों के बाद अष्टांग योग के बारे में बताया गया है। इसलिए ही प्राचीन साहित्य में सांख्य और योग को एक ही तत्व की दो पक्ष माना गया है।

आचार मीमांसा :

- पतंजलि ने चित्र की क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, निरुद्ध और एकाग्र यह पांच प्रकार की वितियां मानी गई है, जिनका नाम उन्होंने चित्रभूमि रखा है। उन्होंने कहा है कि आरंभ की तीन चित्रभूमियों में योग नहीं है। योग में आचार का महत्व प्रतिपादित करते हुए पतंजलि कहते हैं कि अच्छे आचरण से योग करना ही मानव स्वास्थ्य के लिए हितकारी है। गीता में कहा भी गया है "योग कर्मसु कौशल्म्" पतंजलि ने मोक्ष प्राप्ति के लिए योग को ही सर्वश्रेष्ठ बताया है।

वैशेषिक दर्शन मीमांसा के संदर्भ में

आचार मीमांसा :

- व्यक्ति और ससृष्टि में क्या अंतर या संबंध है, एक व्यक्ति का अन्य एक व्यक्तियों या जगत के प्रति क्या कर्तव्य है। ये और कई अन्य ऐसे प्रश्न है जो कहा जा सकता है कि जो प्रयत्यन श्रृंखला सार्थक और सम्यक उद्देश्य की पूर्ति के लिए दृष्ट को अदृष्ट के साथ जोड़ती है, वैशेषिको को आचार परक दृष्टिकोण भी वेदमुल्क ही हैं। उस धारण की पुष्टि महर्षि कणाद के इन कथनों से हो जाती है कि "धर्म का प्रतिपादन होने और ईश्वरोक्त होने के कारण वेद ही धर्म का प्रमाण है।"

- प्राय: सभी दर्शनों के आकार ग्न्थों मे ज्ञान मीमांसा और तत्व मीमांसा के साथ किसी-न-किसी रूप में आचार का विवेचन भी अन्तर्निहित रहता हैं। धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष ही आचार है। यही कारण है कि प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति कभी-न-कभी यह सोचने के लिए बाध्य हो जाता है कि जीवन क्या है? संसार क्या है? क्या कोई ऐसी शक्ति है जो उसका नियंत्रण कर रही है? क्या मनुष्य जो कुछ है, उसमें वह कोई परिवर्तन ला सकता है?

प्रमाण मीमांसा :

- प्रमाणों के द्वारा ही तत्वज्ञान होने से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। साधारण लौकिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर न्याय शास्त्र के द्वारा तत्वों का विचार किया जाता है। न्यायतम में 16 पदार्थ हैं और नो प्रमेंय है। वैशेषिक दर्शन में प्रेमेयों का विशेष विचार है
- कर्म का विस्तृत विवेचन वौशेषिक दर्शन में किया गया है, प्रमाण मीमांसा में कहे गए कर्म के पांच भेदों को यह लोग भी उन्हें अर्थो में स्वीकार करते हैं। इन सब बातों को देखकर यह स्पष्ट है कि वैशेषिक मत में तत्वों का बहुत सूक्ष्म विचार है फिर भी सांसारिक विषयों के न्याय के मत में वैशेषिक बहुत सहमत हैं। अतएव ये दोनों 'समानतंत्र' कहे जाते हैं।

तत्व मीमांसा :

- महर्षि कणाद ने वैशेषिक सूत्र में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समन्वय नामक छ: पदार्थों का निर्देश दिया और प्रशस्पाद प्रभृति भाव्यकारों ने प्रायः कणाद के मन्तव्य का अनुसरण करते हुए पदार्थ का विश्लेषण किया। शिवआदित्य से पूर्ववर्ती आचार्य चंद्रभति के अतिरिक्त प्राय अन्य सभी प्रख्यात व्याख्याकरो ने पदार्थ की छ: ही मानी, किंतु शिवादित्य ने सप्त पदार्थों में कणादोक्त छः पदार्थ में अभाव को भी जोड़कर शब्द पदार्थ वाद का प्रवर्तन करते हुए वैशेषिक चिंतन में एक क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया।
- यद्यपि चंद्रमति ने दशपदार्थों कणाद समस्त छ: पदार्थ में शक्ति अशक्ति सामान्य विशेष जोड़कर दश पदार्थ का उल्लेख किया गया है। किंतु चीनी अनुवाद के रूप में उपलब्ध इस ग्रंथ का और इसमें परिवर्तित दश पदार्थ वाद का वैशेषिक के चिंतन किए गए अनुसन्धानों द्वारा जो तथ्य सामने आए हैं उनके अनुसार वैशेविक तत्व मीमांसा में प्रमुख रूप से चार मत प्रचलित हुए, जो न्याय और वैशेषिक सामान तन्त्र माने जाते हैं कुछ विद्वानों का यह भी मत है की कणाद ने आरंभ में मुता द्रव्य, गुण और कम यह तीन ही पदार्थ माने हैं।

IV

CHAPTER

दर्शन साहित्य का विशिष्ट अध्ययन

(वैशेषिक एवं न्याय दर्शन के प्रमुख सिद्ध)

ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका

संसार के अंदर आकर प्राणिमात्र जब आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक इन तीन प्रकार के दुःखों का अनुभव करता है। तब उसे समय उन तीनों प्रकार के दुःखों के विनाश के कारण में जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि उनकी निवृत्ति का कारण कौन है? और यदि वह जिज्ञासा दुख की निवृत्ति के कारणभूत औषध सेवन अथवा कामिनी के उपभोग रूप दृष्ट उपाय से ही शांत हो जाती है तो शास्त्र के आधार पर होने वाले दूर गमघिगम तत्वज्ञान की क्या आवश्यकता है? इसका उत्तर दिया गया है कि पुर्वाक्त तीनों प्रकार के दुखों की निवृत्ति दृष्टि उपाय से एकांतिक (आवश्यक)रूप से तथा आत्यन्ति(फिर कभी भी दुख उत्पन्न ना हो) रूप से नहीं होती है। उसकी निवृत्ति के लिए शास्त्र में होने वाला तत्व ज्ञान ही श्रेयस्कर है।

सांख्यदर्शन के अंदर 25 तत्वों को अडीकार किया जाता है और उनकी मीमांसा भी बड़े ही अच्छे ढंग से इस दर्शन के अंदर की गई है। इन्हीं पच्चविशंति पदार्थ के ज्ञान से जीव आध्यात्मिक, अधिभौतिक या आधिदैविक इन तीन प्रकार के दुःखों से सर्वथा छुटकारा प्राप्त कर लेता है सांख्या ने इन तीन दु:खो के विनाश का कारण इसी विवेकज्ञान को अंत में स्वीकार किया है जैसे जैसे कि ईश्वरकृष्ण ने संख्याकारिका में कहा है

“दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा हेतौं तदभिघातके तद्धिघातके।

दृष्टे सापार्थो चेन्नैकान्तात्यन्ततोअभावात् ।।’

इससे तो केवल दुःखत्रय के विनाशकारनी मूल वस्तु में जिज्ञासा का प्रदर्शन बतलाया। वह दुख तेरे से विनाश का कारण कौन है इसका स्पष्टीकरण ईश्वरकृष्ण ने आगे की कारिका में किया है

'दृष्टावदानुश्राविक स हाविशुदिक्षयातिशययुक्त:।

तदिपरीत:श्रेयान व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात्।।’

इन 25 प्रकार के पदार्थों का अंतर्भाव ईश्वर कृष्ण ने केवल चार पदार्थों में ही कर दिया।

मूलप्रकृति विकृतिर्महदाघा: प्रकृतिवि विकृतिय:सप्त।

षोडषस्तु विकारों न प्राकीतिर्न विकृति: पुरुष:।।

इस प्रकार व्यक्त-अव्यक्त(प्रकृति) औरज्ञेय (पुरुष) इनके भेदज्ञान से ही दुःखमय छुटकारा प्राप्त होता है।

यथार्थ संसार की रचना करने वाली मूलभूत प्रकृति किसी की भी कार्य (विकृति) नहीं है अपितु वह समस्त चराचर विश्व की कारण (अविकृति) ही है और महत्व आदि सात पदार्थ किसी के कारण (प्रकृति) किसी कार्य (विकृति) दोनों माने गए हैं तथा 16 पदार्थ पच्च ज्ञानेन्द्रिय,पच्च कामेन्द्रिय दोनों माने गए हैं। पच्च महाभारत एवं एक मन कार्य ही होते हैं वह एकमात्र पुष्कर (कमल) के पलाश (पत्र) के समान न निर्लप हैं।

सांख्य में सामान्यतया चार पदारथ माने गए हैं-करण कार्य कार्यकरणोभयरूप और कार्यकरनणानुभयात्मक ।

जिनमें कारण - भूतपदार्थ केवल प्रकृति है और कार्य भूत पदार्थ 16 है,चक्षु आदि 5 ज्ञानेन्द्रिया वाणी आदि पांच कर्मेंद्रियां शब्द आदि पांच तन्मात्राएंऔर मन। महत्, अहंकार 5 तन्मात्राएं। यह सात पदार्थ कारण कार्य उभयरूप है और पुरुष न किसी का कार्य है, पदार्थ के ही 25 भेद हो जाते हैं।

इन पूर्वेत पदार्थों के साधन प्रमाण कितने हैं।

<u>सत्कार्यवाद</u>

सांख्यदर्शन सत्कार्यवाद का समर्थन सत्कार्यवाद का अर्थ है कि कार्य कारण में सत् होता है अथार्थ कार्य न तो कोई नवीन वस्तु है न कोई नया आरंभ बल्कि वह कारण की ही बदली हुई अवस्था है। इस परिवर्तन को नया आरंभ करने के स्थान पर कारण की व्यक्त अवस्था कहना उचित है अथार्थ कारण में कार्य पहले अव्यक्त था और अब व्यक्त हो गया है।

संख्यिकारिका में सत्कार्यवाद की स्थापना किस कार्य का द्वारा की गई है।

असदकरणादुपादनपादानगृहणात्सर्वसंभवाभावात्।

शक्तस्य शक्यकरणात् कारणाभावाच्च सत्कार्यम्।।

असद अकरणात्-जिसका अस्तित्व ही नहीं है उसकी कभी उत्पत्ति नहीं हो सकती। जैसे बालू में घी का अभाव है इसलिए किसी भी प्रकार से बालू से घी नहीं निकला जा सकता।

उपादान ग्रहणात-किसी कार्य की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त कारण की खोज की जाती है जैसे-दही उत्पन्न करने के लिए दूध की खोज की जाती है और तेल उत्पन्न करने के लिए तिलहन की खोज की जाती है इससे पता चलता है कि कार्य अपने खास कारण में ही पहले से स्थित है। यदि ऐसा नहीं होता तो घी उत्पन्न करने के लिए दूध की ओर तेल उत्पन्न करने के लिए तिलहन की खोज क्यों करते?

सर्वसंभावाभावात् -हर वस्तु नहीं उत्पन्न हो सकती ;जैसे बालू से घी नहीं निकलता और ने हुई से टेबुल बनता है।यदि कार्य अपने खास कारण में छुपा नहीं रहता, तो फिर किसी से किसी भी वस्तु की उत्पत्ति हो जाती।

शक्यकरणात्-कारण अपनी योग्यता के अनुकूल ही कार्य उत्पन्न करता है। दूध केवल दही मलाई या अन्य कोई खाद्य -पदार्थ बन सकता है। इससे खाद नहीं बन सकती है। इससे सिद्ध होता है। कि कारण उसी कार्य उत्पन्न कर सकता है जिसके लिए वह योग्य ऐसा इसलिए होता है कि कार्य पहले से ही अपने कारण में निहित है।

कारणाभावाच्च सत्कार्यम् -कार्य और कारण अभिन्न है। वास्तव कारण और कार्य एक ही वस्तु के दो पहलू हैं इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता । करण कार्य का छिपा हुआ रूप है और कार्य कारण का खुला हुआ रूप। इससे पता चलता है कि कार्य कारण में उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान रहता है।

<u>पुरुष का स्वरूप</u>

ईश्वरकृष्ण की 'संख्याकारिका' में पुरुष की सत्ता सिद्ध करने हेतु पांच तर्क दिए गए हैं जो निम्नलिखित कारिका में संकलित हैं

'संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविर्ययात् अघिष्ठानात्।

पुरुषोंअस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थप्रव्त्ेशच।।

संघातपराअर्थत्तवात्-यह जगत् प्रकृति के तीनों गुना से निर्मित है और जड़ होने के कारण साधन है। प्रश्न है कि इसका साध्य कौन है। इसका शादी वही हो सकता है जो चेतन हो तथा भोक्ता हो। यह पुरुष ही है। यह प्रयोजन मूलक प्रमाण है

त्रिगुणादिविपर्ययात्- प्रकृति अपने स्वरूप में त्रिगुणात्मक है तथा परिणामी है तार्किक दृष्टि से त्रिगुण निर्गुण की ओर संकेत करता है और परिणामी अपरिणामी की ओर । यह निस्त्रगुण तथा अपरिणामी तत्व है। यह पुरुष की सत्ता सिद्धि का तर्कशास्त्रीय तर्क है।

भोक्तृभावात्-प्रकृति और उसके विचार जड़ होने के कारण हो गए हैं। अतः भोक्ता की अपेक्षा रखते हैं इसका भोक्ता वही हो सकता है जो जड़ न हो अथार्थ चेतन हो यह चेतन भोक्ता पुरुष ही है इस नीतिपरक प्रमाण कहते हैं।

केवल्यार्थप्रवृतेश्च-बहुत से व्यक्ति कैवल्य की प्रवृत्ति से युक्त है और उसके लिए अत्यधिक प्रयास भी करते हैं। यह सत्ता पुरुष की ही है इस तर्क धार्मिक तथा आध्यात्मिक तर्क कहते हैं। पुरुष या आत्मा की अनेकता सिद्ध करने के लिए वह तीन तर्क प्रस्तुत करता है जो निम्नलिखित कारिता में संकलित है

'जननमरणकरणानाम् प्रतिनियमात् अयुग्पत्वेश्च।

पुरुष बहुत्वं सिद्धम् त्रैगुण्यविटर्ययात् चैव।।'

प्रकृति का स्वरूप

संपूर्ण जगत का मूलकारणमूल प्रकृति ही है। प्रकृति के तीन गुण हैं सत्व, रजस् तथा तमस्। सत्यगुण -सुखात्मक राजगुण -दु:खात्मक और तमोगुण मोहात्मक है। तीनों गुण सदैव संयुक्त तथा आयोज्य रहते हैं। परस्पर विरोधी होने के बाद भी यह कार्य की उत्पत्ति वैसे ही मिलकर करते हैं जिस प्रकार दीपक में तेल बत्ती और ज्वाला परस्पर भिन्न होकर कर भी प्रकारोत्पन्न करते हैं। हर वस्तु में इन तीनों का उपस्थिति के कारण ही एक वस्तु किसी को सुख, किसी को दुःख तो किसी को अलस्य से युक्त बना देती है;

'सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलच्च रन:।

गुरु वरणकमेव तम् प्रदिपवच्चार्थतो वृति:।।

सृष्टीकृम

सांक्यकारिका मे ईश्व कृष्ण ने सृष्टीकृम। विकासवाद के संदर्भ में कहा है।

'प्रकृतेर्महास्तते अहंकारस्तस्माद् गणस्च षोडशक:।

तस्मादपि षोडशकात्पच्चभ्य: पच्च भूतानि।।

सांख्य के अनुसार जगत का विकास प्रकृति से होता है जो की संख्या के द्वैतवाद मैं पुरुष के अतिरिक्त अन्य सता है प्रकृति सतत परिणामी है अर्थात् सत्व गुण की क्रिया- प्रतिक्रिया सत्व गुण, की रजत् से और तमस की तमस से होती है। यह साम्यावस्था तब भंग होती है। यह वैषम्यावस्थाप है जिसमें तीनों गुण एक दूसरे क्रिया- प्रतिक्रिया करते हैं और गुणों के विभिन्न संयोजन के माध्यम से ही जगत् का विकास होता है प्रशन उठता है कि पुरुष और प्रकृति में संयोजन क्यों और किस प्रकार होता है, क्योंकि पुरुष संभवता शुद्ध चेतन है जबकि प्रकृति अचेतन है। सांख्य का उत्तर है कि पुरुष और प्रकृति दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता होती है।

पुरुष चेतन किंतु निष्क्रिय हैं जबकि प्रकृति अचेतन किंतु सक्रिय है। उद्देश्य तभी पूरा कर सकते हैं जब एक दूसरे की सहायता करें। क्योंकि वह विषय गये तथा भोग्य है। पुरुष के कैवल्य हेतु भी आवश्यकता है। क्यों है प्रकृति और उसके विकारों से अपनी भिन्नता को समझे। दोनों के सहयोग की व्याख्या सांख्याने पंगु-अन्ध न्याय के माध्यम से की है। वैसे ही विरोधी स्वभाव के होने के बावजूद पुरुष और प्रकृति भी अपने-अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सहयोग करते हैं

वह महत या 'बुद्धि' है।यह निर्णय और नीचे करने की शक्ति है। तथा अत्यंत सूक्ष्म है। बुद्धि में अपना प्रकाश नहीं है किंतु पुरुष के प्रकाश से यह इतनी जगमग रहती है कि इसके प्रकाश युक्त होने का भ्रम होता है अहंकार का अर्थ है मैं या मेरा का भाव जो की बंधन का मूल कारण है। अहंकार के तीन भेद है सात्विक राजसिक और तामसिक अहंकार। राजसिक अहंकार सबसे पहले सक्रिय होता है और शेष दोनों को गति प्रदान करता है। सात्विक अहंकार से एकादश इंद्रियों का विकास होता है जिनमें पांच ब्रह्मा इंद्रियां एक आंतरिक इंद्रियां मन तथा पांच कर्मेंद्रियां शामिल है। तामसिक अहंकार से पंचतन्मात्राओं का विकास होता है।

तन्मात्र अतिसूक्ष्म तथा सार रूप होते हैं यह पांच है शब्द, रूप,रस, गंध, स्पर्श। इन पंचतंन्मात्राओं से स्थल महाभूतों का विकास होता है शब्द तन्मात्र से आकाश:,शब्द, व स्पर्श तन्मात्र से वायु: शब्द, स्पर्श व रूप से अग्नि: शब्द रूप स्पर्श व रस से जल: तथा पच्चतन्मात्राओ से पृथ्वी का विकास होता है। इस प्रकार प्रकृति में अव्यक्त जगत विरूप परिणाम के कारण व्यक्त होता है तथा प्रलय अवस्था में पुन: प्रकृति के तीनों गुना के रूप में स्थित हो जाता है।

'एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्वयाख्य:।

गुणवैषम्यविमर्दत् तस्य भेदास्त पच्चाशत्।।

प्रकृति के कार्य बुद्धि की सृष्टि का निरूपण करते हुए बताया गया है कि यह बुद्धि की सृष्टि यद्यपि संक्षेप में चार प्रकार की है तथापि इस सृष्टि के गुना के न्यूनाधिक होने के कारण परस्पर के उनके विमर्दन से 50 भेजे जाते हैं और पूर्वक्त आठ भाव पदार्थों- धर्म - अधर्म-ज्ञान -अज्ञान-वैराग्य-अवैराग्य-ऐश्वर्य- अनैश्वर्य का भी इन्हीं में अर्थात विपर्यय अशक्ति तुष्टि सिद्धि किन्हीं चारों में अंतर्भाव भी है जैसे आज्ञान का विपर्यय में, ज्ञान का सिद्धि में और धर्म -वैराग्य ऐश्वर्या का तुष्टि में तथा धर्म- वैराग्य-ऐश्वर्य का तुष्टि में तथा अधर्म-अवैराग्य-अनैश्वर्य का आशक्ति में अन्तर्भाव है।

विपर्यय के पांच भेद हैं- तम मो महामही तामिस्र,अन्धतासिस्त्र । अशक्ति के 28 भेद हैं जैसे 'आन्धय-बाधिर्य-आजिघृत्व-भुकत्व-जड़त्व कुष्ठिल_पगुत्व-कौण्य-क्लैव्य

उदावर्त-उन्माद(एकादशेन्दृयवधरुपा)-असुवणॉ

अज्ञानमलिना-मनोज्ञा-अद्षटि-अपरा-सुपरा-असुनेत्रा-वसुनाडिका-अमुदित-आमोदमाना:(सिद्धि -वधरुपा:) तुष्टिर्नवधा-प्रकृति-उपादान-काल-भाग्य-पार-सुपार-पारापार-अनुन्तताम्भ-उत्माम्भरुपा:च।पुनश्च सिद्धि:अष्टविधा: -अणिमा-महिमा-गरिमा-लघिमा-प्राप्ति-प्राकाम्य-वशिल-ईशित्वरुपा:।

ईश्वरकृष्ण है मैं सांख्य कारकों में कहा भी है

'पांचवीर्ययभेदा:भवन्त्यशक्तिश्च करणवौकल्यात्।

अष्टाविशतिभेदा तुष्टिर्नवधाडअष्टधा सिद्धि।।

<u>कैवल्य</u>

सांसारिक जीवन आध्यात्मिक अधिभौतिक और अधिदैविक दुःखों से भरा है। त्रिविधि दुःख की निवृत्ति को सांख्य ने मोक्ष, मुक्ति, अपवर्ग, कैवल्य वसल्ले की संज्ञा दी है। यही परम पुरुषार्थ है यह जीवन का चरम लक्ष्य है मोक्ष में पुरुष अपने चैतन्य रूप में प्रकाशित रहता है। क्योंकि प्रथम तो सुख-दुख सापेक्ष है। एवं दूसरे, सुख सत्वगुण का कार्य है और पुरुष स्वभावत: त्रिगुणातीत है।

वह बुद्धि में प्रकाशित अपने प्रतिबिंब के साथ तादात में स्थापित कर लेने के कारण अंतःकरण अविच्छिन्न चैतन्य के रूप में जीव के रूप में प्रतीत होने लगता है। बंधन इस जीव का होता है शुद्ध पुरुष का नहीं।

जब पुरुष को अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। तब वह मुक्त हो जाता है, जो वस्तुतः है वह सदा ही है। और स्वरूप का ज्ञान मोक्ष है।

पुरुष को अपने स्वरूप का ज्ञान स्वयं को अचेतन प्रकृति तथा अंत:करणादि से सर्वथा भिन्न जान लेने पर होता है। यह विवेक ज्ञान है, पुरुष और प्रकृति के भेद का ज्ञानहै। कर्म गुना से संभव है अतः कर्म से मोक्ष नहीं मिल सकता क्योंकि मोक्ष निस्त्रैगुण्य है। शुभ कर्मों से स्वगीदि और अशुभ कर्मों से नरकादि की प्राप्ति होती है और जब यह ज्ञान तत्व अभ्यास से सेड्रिड हो जाता है एवं निर्वकल्प अनुभव का रूप ले लेता है जहां जातव्य शेष नहीं रहता तब इसे केवल या विशुद्ध ज्ञान कहते हैं।

यह विशुद्ध ने पुरुष का स्वरूप है और यह स्वरूप ज्ञान ही मोक्ष है। सांख्य जीवन मुक्त और विदेह मुक्त दोनों को मानता।

संवेग ज्ञान होते ही पुरुष मुक्त हो जाता है यह जीवन मुक्ति की अवस्था है जैसे कुम्हार का चाक, कुमार के हाथ हटा लेने पर भी, पूर्व वेज के कारण थोड़ी देर घूमता रहता है और फिर वेज समाप्त हो जाने पर बंद हो जाता है उसी प्रकार जीवन मुक्ति का शरीर प्रारंब्ध कर्मों के कारण चलता रहता है और उनके समाप्त होने पर शरीरपात होकर विदेहमुक्त हो जाता है

'तिष्ठति संस्कारवशाच्चकृभृमिवद घृतशरीर:।।

'प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृतै

ऐकान्तिकमाल्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।।

सांख्य के अनुसार पुरुष बंधन और मोक्ष से असंप्क्त है। अतः करणावच्छिन्न जीव का लिंग शरीर के रूप में बंधन होता है उसी का मोक्ष होता है इस प्रकार प्रकृति ही बंधती है और प्रकृति मुक्त होती है। अतः पुरुष का महत्व बंधन होता है नहीं जन्म मरण रुपीस अंसार चक्र में फसता है और नहीं वह मुक्त होता है यह तो प्रकृति ही है जो लिंग शरीर के रूप में नाना पुरुषों के आश्रय में बंधती है,ससंरण करती है, और मुक्त होती है।

'तस्मान न बध्यते न मुच्यते नापि संसरत कश्चित।

संसरति बध्यते मुच्यते न नानाश्रया प्रकृति:।।'

जिस प्रकार एक नर्तकी रंगमच पर अपना नृत्य दिखाकर दर्शकों का मनोरंजन करके रंगमंच से चली जाती है उसी प्रकार प्रकृति भी पुरुष के समक्ष अपना प्रदर्शन करके निवृत हो जाती है।

तब विवेकज्ञान द्वारा वह मुक्त हो जाता है और प्रकृति भी पुरुष को भोग तथा अपवर्ग रूपी प्रयोजन सिद्ध करके निवृत हो जाती है ईश्वर कृष्ण ने इसी को अलग से करके कहा प्रकृति से अधिक सुकुमार कोई नहीं है वह इतनी लज्जा शील है कि एक बार पुरुष द्वारा देख लिए जाने पर दोबारा उस पुरुष के सम्मुख कभी नहीं आती

'प्रकृते: सुकुमारतर न किंचिदस्तीति मे मतिभर्तवति।

या दृष्टाअस्मति न पुनर्दर्शनमुपैति पुरुषस्य।।

सदानंद-वेदांतसार

वेदान्त का अर्थ है-वेदों का अंतिम भाग। वस्तुत: उपनिषद वेदो के अंतिम भाग हैं अतः वेदांत के नाम से अभिहित किया जाता है परंतु उपनिषद् वेदों अनेक है और कई स्थानों पर इनके सिद्धांतों में तभी दृष्टि गोचर होती है।

वेदांत्रदर्शन मुख्य आधार बादरायण ब्रह्म सूत्र है कि किसी भी भाष्य के बिना इनका अर्थ स्पष्ट नहीं होता। यही कारण है कि इन सूत्रों के व्याख्याकारो ने विभिन्न प्रकार की व्याख्या की। फल स्वरुप कुछ नए संप्रदाय बन गए जिनमें चार प्रमुख हैं जगतगुरु शंकराचार्य का अद्वैतवाद, श्री वल्लभाचार्य का शुदा-द्वैतवाद, माधवाचार्य का द्वैतवाद और रामानुजाचार्य का विशिष्ट -द्वैतवाद।

वेदांत दर्शन शंकराचार्य के अद्वैत मत का प्रतिपादन करता है इस संसार में कुछ नहीं है-सर्व खल्विद ब्रह्म, नेहा नानारिक्त, किच्चन। लेकिन माया या अज्ञान के कारण हम इस संसार में नानत्व देखते हैं। यह माया या अभिधा अभ्यास के रूप में भी मानी जाती है जब यह माया रुपी पर्दा हमारी आंखों से हट जाता है तब मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है जिस प्रकार अंधेरे में मनुष्य रज्जु को सांप समझ लेता है। इसी प्रकार साधारण मनुष्य आज्ञा या माया की जाल में पड़कर मिथ्या संसार को सत्य समझने लगता है यह विवर्तवाद का उदाहरण है। यह ज्ञान रूपी पर्दा वेदांत के वाक्य का श्रवण मनन और निदिध्यासन करने से दृश्य दूर हो जाता है।
पारिवा्जक सदान्द का वेदान्त के प्रमुख सिद्धांतो को संक्षेप मे जानने-समझने के लिए महत्वपूर्ण गृन्थ है।

<u>अनुबन्धयते अनेनेति अनुबन्ध:</u>

''अर्थात किसी ग्रंथ के अनिवार्य या अपरिहार्य अंग अपेक्षाएं, शर्तें अनुबंध कहलाती हैं जैसे -किसके द्वारा यह ग्रंथ पढ़ा जाना चाहिए? इसका विषय क्या है? प्रतिपाघ के विषय के साथ इस ग्रंथ का क्या संबंध है? इसके अध्ययन का क्या प्रयोजन है अतः यह अनुबंध कर है अधिकारी विषय संबंध एवं प्रयोजन। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है.

अधिकारी-इस ग्रंथ के अध्ययन के लिए योग्य व्यक्ति वह है। इससे पूर्व के किसी जन्म में वेदों एवं वेदंगों का वीधि पूर्वक अध्ययन करके समस्त वेदांर्थ सामान्य रूप से जान- समझ लिया है। तथा काम में वृत्य करके नित्य निमित्रिक-प्रायशिचत उपासना कर्मों के अनुष्ठान से समस्त पापों से दूर हो जाने के कारण जिसका अंत कारण अत्यंत निर्मल हो गया है जो साधन चतुष्टय(विवेक वैराग्य शमदमादी तथा मुमुक्षुत्व) से संपन्न है।

विषय-वेदांतशास्त्र का विषय है जीव और ब्रह्मा की एकता जो शुद्ध चैतन्य रूप है और इस शास्त्र का प्रेमय है, क्योंकि समस्त वेदांत-वाक्यो का तात्पर्य जीव और ब्रह्मा की वास्तविक एकता ही है।

संबंध-प्रतिपाघ विषय तथा ग्रंथ के बीच का प्रतिपाघ-प्रतिपादन संबंध। जीव ब्रह्मैक्य यथार्थ शुद्ध चैतन्य प्रेमय हैं। एवं वेदांत उसका प्रतिपादक प्रमाण दोनों एक दूसरे के प्रतिपाघ भाग प्रतिपादक हैं।

प्रयोजन-जीव और ब्रह्म के ऐक्य रूप प्रेमय के विषय में वर्तमान अज्ञान की निवृत्ति, तथा जीव को वस्तुत: ह ब्रह्म रूप में जानने वाला ब्रह्म ही होता है। अपने वास्तविक स्वरूप 'आनंद' की प्रति इस शास्त्र का प्रयोजन है।

<u>आज्ञान</u>

ब्रह्म शक्ति जगन्मिथया जीवन ब्रह्मोव नापर: ब्रह्म और आत्मा एक है दोनों परम तत्व के प्रायहैं। जगत प्रपंच माया की प्रतीती है। जिस प्रकार रज्जु भ्रम में सर्प के रूप में प्रतीत होती है और रज्जु का ज्ञान हो जाने पर सर्प का बोध हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्म विद्या या माया के कारण जीव जगत पर प्रपच्च में प्रतीत होता है।

माया, अविद्या अज्ञान, अभ्यास अध्यारोप विवृति भ्रांति ब्रह्म सदस्य निर्वाण संत आदि शब्दों का प्रयोग वेदांत में प्राय: प्रर्यायों के रूप में किया जाता है। वेदान्तर में अज्ञान के विषय में कहा है'अज्ञान तु सद्सद्भ्यामनिवचीनिय त्रिगुणात्मक ज्ञानविरोधि भावरुपं यत्विकच्चिदिति वदन्त्यहमज्ञ इत्याघनुभवात्।

शंकराचार्य के अनुसार माया, अविद्या आज्ञान की निम्नलिखित विशेषताएं हैं -

- माया स्वरूपत: अचेतन क्या जड़ है तथा अपने अस्तित्व हेतु ब्रह्म पर निर्भर है। यह संख्या की प्रकृति से भिन्न है सांख्य की प्रकृति सत् और स्वतंत्र भी है जबकि यह सत् है न हीं स्वतंत्र ।
- माया भावरूप है किंतु सत् नहीं है उसे भाव रूप कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना है कि अभाव रूप नहीं है

- माया सदसदनिर्वाचनीय यह भावभावविलक्षण है । माया सत् नहीं है क्योंकि ब्रह्म से भिन्न इसकी कोई सता नहीं है यह असत् भी नहीं है, क्योंकि अधिष्ठान के ज्ञान से इसका बोध हो जाता है यह असत् भी नहीं है क्योंकि इसकी प्रतीति होती है। यह सत् और असत् दोनों भी नहीं है क्योंकि सत् और असत् प्रकाश और अंधकार के समान एक साथ नहीं रह सकते।
- माया अनादी है किंतु अनंत नहीं है यह अनादी है। क्योंकि ब्रह्म की अभिन्न शक्ति है अधिष्ठान के ज्ञान से इसकी निवृत्ति हो जाती है जैसे रस्सी के ज्ञान से रज्जु सर्प समाप्त हो जाता है।
- माया का आक्षय तथा विषय बह्र है किंतु ब्रह्म उससे अप्रभावित जैसे रज्जू सर्प भ्रम की स्थिति में रस्सी सांप से अप्रभावित रहती है।
- माया विलर्त है। यह आभास मात्र है। रज्जू भ्रम में भी सिर्फ के रूप में परिवर्तित नहीं होती अतः माया का प्रातीतिक अर्थात् व्यावहारिक और प्रतिभासिक सत्ता है जगत प्रपंच की व्यावहारिक और रज्जू सर्प की प्रतिभासिक। रज्जु सर्पादि व्यक्तिगत भ्रम को जिसका बाध लौकिक ज्ञान से व्यवहार से, व्यवहार से हो सके 'प्रतिभास' कहते हैं! तथा इस जातिगत विराट् को भ्रम को इस लोक व्यवहार को, जिसका बाध ब्रह्मज्ञान से परमार्थ से हो सके व्यवहार कहते हैं।
- माया के दो पक्ष /शक्तियां हैं-आवरण तथा विक्षेप। आवरण इसका अभावनात्मक पक्ष है जबकि विक्षेप भावनात्मक पक्ष । आवरण का अर्थ है -अधिष्ठान के ज्ञान को आवृत कर लेना, जबकि विक्षेप का अर्थ -अधिष्ठान के स्थान पर अध्ययन पदार्थ को प्रस्तुत कर देना।

अध्यारोप-अपवाद

'असर्पभूतायां रज्जौ सर्पारोपवद्वस्तुयस्त्वारोपोअध्यारोप:। अर्थात् (कभी भी) सर्प भाव को न प्राप्त होने वाली रस्सी पर सर्प के अरोप के समान वस्तु पर अवस्तु का आरोप ही अध्यारोप है।

भरम की अवस्था में एक वस्तु को दूसरे पर आरोपित किया जाता है ।जिसे शंकर ने 'अध्यास' अध्यारोप' कहा जाता है। शंकर के मतानुसार भ्रम में जिस वस्तु का आरोपन होता है उसे स्मृति नहीं कहा जा सकता है और असत् कहा जा सकता है। उसे दोनों अर्थात् सत् और असत् भी नहीं कहा जा सकता है। बरम में जो वस्तु दिखाई देती है वह अनिर्वाचनिय होती है।

विचार करने पर हम पाते हैं इस सत् और असत् दोनों नहीं कहा जा सकता क्योंकि सर्प में सत् अंश कुछ भी नहीं है तथा तर्क के फलस्वरुप इसे असत् भी नहीं कहा जा सकता है । अतः इसे अनिर्वचनीय कहना प्रमाण संगत है।

अध्यारोप के अपवाद का निरूपण वेदांतसार में बताया है

'अपवादों नाम रज्जूववर्तस्य सर्पस्य

रज्जुमात्रत्ववद्वस्तु विवर्तस्यावस्तु नोअज्ञानादे:प्रपच्चस्य वस्तुमात्रत्वम्।

तदुक्तम् 'सत्वतोअन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरीत:।

अत्वतोअन्यथापप्रथा विवर्त इत्युदाहत:।।

यथार्थ भ्रांति में रस्सी के स्थान में प्रतीत होने वाला सर्प केवल रस्सी ही होता है, उससे भिन्न कुछ नहीं किसी वस्तु का वस्तुतः अन्यथा अर्थात दूसरे रूप में प्रकट होना विकार कहा जाता है और मिथ्या रूप में अर्थात् ऊपर- ऊपर से दूसरे रूप में प्रतीत होना विवर्त कहा गया है।

जैसे अंधेरी रात में रास्ते में पड़ी हुई रस्सी को सांप समझकर कोई व्यक्ति चौंककर दूर भागे तो रस्सी में भृमवश प्रतीत होने वाला सांप तो अध्यारोप हुआ और दीप के प्रकाश से उसे रस्सी देखने वाला कोई दूसरा इस प्रतियमान सांप को मिथ्या बात कर रस्सी होने का ज्ञान करा दे तो यही मिथ्या सर्प के खण्डन के साथ रस्सी का अपवाद है प्रत्तीमान वस्तु का खण्डन ही अपवाद है।